सबला

वर्ष 3 : अंक 9-10 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली दिसंबर-जनवरी, 1991

हम नही बाबुल रवूँटे की गैया कि जित हाँको हँक जाँय

सहयोग मंडल

कमला भसीन
सुहास कुमार
ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन
'जागोरी' समूह
प्रतिभा गुप्ता
तापोसी घोषाल
(चित्रांकन : मुख्य पृष्ठ)

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

काम कब पूरा होगा
बोल भोलानाथ?
कब मैं खेलूंगी
बोल भोलानाथ

काम-काम जब देखो
सारे दिन काम,
पाठशाला, खेलकूद का
कहीं नहीं नाम!

आराम मिलेगा कब
बोल भोलानाथ?
सपने सजेंगे कब
बोल भोलानाथ?

बचपन मिलेगा कब
बोल भोलानाथ?

- आशा के सौजन्य से.

औरतों की ताकत कम नहीं

सुहास कुमार

हम औरतों का जीवन अधिकतर डर में बीतता है। कभी समाज का डर, कभी रिश्तेदारों का डर। कभी परिवार वालों का डर और कभी धर्म का डर।

पर, क्या हम सुचमुच डरपोक हैं? या डर हमारे मन में बिठा दिया गया है!

हम लड़कियों को शुरू से सिखाते हैं कि उन्हें दब-ढंक कर रहना है। उनमें सहनशीलता होनी चाहिए। हम उन्हें अपनी बात कहने का हक भी नहीं देते। ज़िंदगी से जूझने के लिए जो ताकत चाहिए वह विकसित होने नहीं देते।

पर यदि हम अपने पैरों पर खड़ी हैं तो हमारे हाथों में ताकत है। अक्सर देखा गया है कि हम उस ताकत का इस्तेमाल नहीं कर पातीं। पैसा कमाने के बावजूद हम उसे कब, कैसे और कहां खर्च करना है नहीं जानतीं।

सोच-समझ कर लिया फैसला हमारी ताकत बन सकता है। हम उसे ठीक समझती हैं तो उस पर अड़ना होगा, उस पर अमल करना होगा।

दक्षिणपुरी बस्ती में रहने वाली शांति ने बताया कि जब उसके पति की मृत्यु हुई तब सबने कहा—"तुम कोई एक फल छोड़ दो।"

उसने कहा—"क्यों छोड़ दूं? क्या मेरा पति वापिस आकर उसे खाएगा? या यह फल उस तक पहुंचेगा? मैं नहीं छोड़ूंगी।" शांति ने फल नहीं छोड़ा।

कोई उस पर ज़ोर-जबर्दस्ती नहीं कर पाया। उसने अपने मन में महसूस किया कि वह चाहे तो मनचाही कर सकती है। उसने पढ़ना-लिखना

सीखा और अब एक स्वयंसेवी महिला संगठन में स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में काम कर रही है। उसने अपने सात बच्चों को पाला-पोसा। हर कदम उसे नई ताकत देता गया।

गलत रीति-रिवाज तोड़ें

जो रीति-रिवाज हमें कमज़ोर बनाते हैं उन्हें छोड़ना होगा। शुरुआत बेटियों के जन्म से करनी होगी। बेटियों को हम अनचाही क्यों मानें? उनके जन्म पर उतनी ही खुशी क्यों न मनाएं जितनी बेटों के जन्म पर? हम उन्हें शारीरिक और मानसिक विकास के पूरे मौके क्यों न दें? अगर

बेटी अपने पैरों पर खड़ी है तो क्या वह अपने मां-बाप का सहारा नहीं बनेगी?

अगर हमें यौन अत्याचार का सामना करना पड़ता है तो इसमें हमारा क्या दोष? शायद यही ऐसा अपराध है जिसमें पीड़ित व्यक्ति को ही अपराधी करार कर दिया जाता है। इससे बढ़कर अत्याचार क्या हो सकता है?

क्या घर के कामों में लगे रहना बेटी की ही जिम्मेदारी है? बेटे की नहीं। मां ही बेटों को सिर पर चढ़ाती है। घर में बेटे और बेटी को बराबर के काम करने की आदत डालें। यह भावना कि यह काम लड़कियों का है, लड़कों का नहीं गलत है। उसे न पनपने दें। पति-पत्नी के संबंधों में यही बात पत्नी की स्थिति कमजोर बनाती है।

बाल-विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा-प्रथा, देवदासी प्रथा औरतों की स्थिति को कमजोर बनाती हैं। आज जब कानूनन ये गलत बातें हैं तब समाज हम पर इन बातों के लिए दबाव नहीं डाल सकता। कई रीति-रिवाज ऐसे चले आ रहे हैं जो औरतों की स्थिति कमजोर बनाते हैं। उन्हें दूर करना होगा।

अपने अधिकार लें

संपत्ति पर बेटी का अब कानूनन बराबरी का अधिकार है। बहनों को अपने भाइयों के लिए सपंत्ति नहीं छोड़नी चाहिए। वह हमारा अधिकार है। जब तक हम अपने अधिकारों को समझ कर उन्हें हासिल करने की कोशिश नहीं करेंगी तब तक हमारी ताकत नहीं बढ़ेगी।

हमारी मेहनत, हमारा हुनर, हमारी ताकतें हैं। यह बात अक्सर सुनी गई है कि औरत ही औरत की सबसे बड़ी दुश्मन है। इसका मर्म समझने की कोशिश करें। क्या हम स्वयं अपनी स्थिति के लिए जिम्मेदार नहीं हैं?

हम चाहें तो क्या ज़्यादा बच्चे पैदा करने पर रोक नहीं लगा सकतीं? हम चाहें तो क्या अपनी बेटियों को स्कूल नहीं भेज सकतीं? क्या हम उनकी काबलियत को बाहर आने का मौका देती हैं? क्या हम बहू और बेटी में भेदभाव करती हैं? यदि हम ऐसा न करें तो स्त्रियों का जीवन ज्यादा सुखकर होगा। जो बातें हमें अपनी सास की बुरी लगी थीं क्या वही बातें हमें अपनी बहू के साथ करनी हैं? अगर उसे इंसान के रूप में देखें, सिर्फ बहू के रूप में नहीं तो संबंध मधुर बनेंगे। वह घर का अधिक उपयोगी सदस्य भी बन सकेगी।

अधिकार छिनने न दें

पितृसत्ता वाला समाज तरह-तरह से अधिकार छीनने की कोशिश करता है। अगर बेटा बहू को पीटता है तो उसे हमें रोकना होगा। जिस सामाजिक ढांचे में औरत पर अत्याचार होता है, कल आपकी बेटी भी उसका शिकार बन सकती है। दहेज न लाने के कारण उसे भी जलाया जा सकता है। बांझ होने या केवल लड़कियां पैदा करने पर या अन्य कारणों से उसे भी सताया जा सकता है।

इन सब के मूल में है हमारा बेटी-बेटे को समान रूप से न पालना। जिस दिन माता-पिता दोनों को एक बराबर समझने लगेंगें, दोनों को समान शिक्षा और समान बढ़ावा देने लगेंगें, उस दिन से लड़ाकियों और औरतों की ताकत बढ़ने से कोई नहीं रोक सकेगा। □

बहनों का ब्रह्म विद्या मंदिर

कमला भसीन

अभी कुछ दिन पहले महाराष्ट्र में पवनार जाने का मौका मिला। वहां पर श्री विनोबा भावे का बनाया एक आश्रम है। विनोबा जी हमारे देश के एक बड़े चिंतक, समाज सेवी, गांधी वादी विचारधारा के प्रचारक और विद्वान थे। सब कुछ त्याग कर वे ज्ञान, आत्मज्ञान की खोज में लग गए थे। गांधी जी की तरह ही विनोबा जी ने भी महिलाओं के जागरण के बारे में सोचा, लिखा और काम किया।

पवनार आश्रम में ही ब्रह्म विद्या मंदिर है जो 1959 में शुरू हुआ। विनोबा का सपना था कि एक ऐसा आश्रम हो जहां लोग मिल कर रहें, मिल कर काम करें, मिल कर ज्ञान और विद्या पाएं। यह सपना विनोबा ने महिलाओं को सौंपा। विनोबा कहा करते थे जब तक औरतें ज्ञान नहीं पाएंगी, खुद धार्मिक ग्रन्थ नहीं लिखेंगी, काव्यों की रचना नहीं करेंगी तब तक वे पुरुषों के मोहताज रहेंगी। विनोबा स्त्री-शक्ति में विश्वास रखते थे। वे कहते थे स्त्रियों में जो शक्ति है वह पुरुषों में नहीं है। इस स्त्री-शक्ति को जगाने का विनोबा ने खूब काम किया।

आज इस विद्या मंदिर में तेरह बहनें रहती हैं। अलग-अलग धर्मों और अलग-अलग उम्र की। दो बहनें विदेशी भी हैं जो सालों से यहीं रहती हैं।

विद्या मंदिर की सभी बहनों को ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। वे आश्रम के सब काम खुद करती हैं। वहां कोई नौकर नहीं है। अपना भोजन खुद पैदा करती हैं—अनाज और धान उगाती हैं, एक गोशाला चलाती हैं। अपना प्रैस (छापाखाना) चलाती हैं। इस प्रैस से और ख़र्चों के लिए कमाई भी हो जाती है।

सभी बहनें मिल कर रसोई का काम करती हैं और शौचालय, स्नानघर की सफाई भी खुद ही करती हैं। यानि वे पूरी तरह से स्वावलंबी हैं, किसी पर मोहताज नहीं हैं।

दिन में 5-6 घंटे शारीरिक काम के साथ-साथ वे पढ़ने लिखने का काम भी करती हैं। यहां से वे एक पत्रिका निकालती हैं 'मैत्री'। मैत्री में स्त्री-जागरण और स्त्री-शक्ति के प्रचार के साथ-साथ सामाजिक प्रश्नों पर भी चर्चा होती है।

इसी विद्या मंदिर से बहनें स्त्री-मुक्ति अभियान चलाती हैं। हर साल एक स्त्री-मुक्ति जलसा होता है जिसमें देश के अलग-अलग हिस्सों से बहने आती हैं।

मैं इन ज्ञानवती, आत्मनिर्भर बहनों को देखकर बहुत ही प्रभावित हुई। मन किया मैं भी कम से कम कुछ महीने ऐसे अच्छे वातावरण में रहूं। घर के पचड़ों से दूर, तू-तू, मैं-मैं से दूर। कुछ पढ़ूं, कुछ सोचूं, कुछ लिखूं और शरीर से मेहनत करूं। औरतों के लिए इस तरह के आश्रमों की बहुत ज़रूरत है जहां वे आम ढर्रे से अलग कुछ कर सकें। इस आश्रम की बहनें मानती हैं कि हर औरत के लिए शादी करना ज़रूरी नहीं है, मां बनना ज़रूरी नहीं है।

एक बात जो मुझे सबसे अच्छी लगी—वह थी कि यहां सब निर्णय मिल कर सर्व-सम्मति से लिए जाते हैं। यानि अगर एक भी बहन किसी निर्णय के ख़िलाफ़ है तो वह निर्णय नहीं लिया

जा सकता। यहां कोई बड़ा नहीं, छोटा नहीं, सब बराबर हैं। हर काम का भी बराबर मूल्य है। सफ़ाई के काम को या खाना पकाने के काम को उतना महत्त्वपूर्ण और कीमती माना जाता है जितना, पढ़ने-लिखने या छपाई के काम को।

इस आश्रम में छपी किताबें पढ़ने लायक हैं। नई सोच, नये विचार। विनोबा जी की एक पुस्तक "स्त्री-शक्ति" मैंने पनवार आश्रम की किताबों की दुकान से ख़रीदी। छोटी सी किताब पर गहरी सोच। यह किताब इस पते से मंगाई जा सकती है।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणासी

अब मैं अपने पैरों पर खड़ी हूं

प्रभा सैनी

मेरा जन्म 6.2.1952 को हुआ था। 1958 में स्कूल में दाखिल करा दी गई। 1968 में मैंने मिडिल पास कर ली। मेरी आगे पढ़ने की बड़ी इच्छा थी, पर पिता जी की बीमारी के कारण मेरी शादी 1969 में कर दी गई। शादी के बाद मैंने एक साल सिलाई का कोर्स किया। फिर घर में रह कर सिलाई का काम करती रही।

1977 में मोबाइल क्रैश का एक केन्द्र त्रिलोकपुरी में खुला। मैंने वहां का काम देखा और प्रभावित होकर मेरे मन में भी काम करने की इच्छा पैदा हुई। मैंने 5 जून, 1977 से गोल मार्केट में निर्माण-स्थल के एक केन्द्र में नौकरी कर ली। मैं बहुत मन लगाकर काम करती रही।

अचानक मेरे पति का 1982 में देहांत हो गया। उस समय मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी थोड़ी सी तनख्वाह में घर-गृहस्थी कैसे संभालूंगी। एक बार तो आंखों के आगे अंधेरा ही छा गया। फिर मुझे आशा की किरण दिखाई दी और मेरे मन में आगे बढ़ने का विचार आया।

उन्हीं दिनों मोबाइल क्रैश में नया वेतन ढांचा बनाया जा रहा था। मैंने सोचा अगर मैं दसवीं पास कर लूं तो मुझे भी संस्था में आगे बढ़ने का मौका मिलेगा।

यह बात मैंने अपने बच्चों से कही। वे बहुत खुश हुए। मैंने नौकरी के साथ-साथ दाखिला ले लिया। जानने वालों को हैरानी हुई कि इस उम्र में मैं कैसे पढ़ पाऊंगी, पर मैंने 1988 में दसवीं पास कर ली। अब मैं नोयडा केन्द्र में संचालिका के रूप में काम कर रही हूं। घर की अच्छी तरह जिम्मेदारी संभाल पा रही हूं। मुझे बड़ा संतोष है और आस-पास सब मुझे इज्ज़त से देखते हैं। □

बेटी का दान क्यों?

संतोष बजाज

अकेले होती है हर नई शुरुआत
अगर शक्ति है पास तुम्हारे
तो ज़माना देगा साथ

ब्याह का मंडप सजा हुआ था। वेद मंत्रों के साथ विधि-विधान से कार्यक्रम चालू था। अंत में आई 'कन्यादान' की रस्म। इसके अनुसार पिता अपनी बेटी का हाथ पकड़ कर वर के हाथ में देकर कन्यादान की रीति पूरी करता है।

ठीक उस समय मधु ने अपना हाथ खींच लिया। बड़े मीठे स्वर में माता-पिता से बोली, "आप मुझे दान क्यों कर रहे हैं? मैं न तो बेजान चीज हूं, न घरेलू सामान और न धन-जायदाद। मैं भी इंसान हूं। मेरा दान मत कीजिए। हां, मेरे साथी के हाथ में मेरा हाथ देकर यह आशीर्वाद दीजिए की हम दोनों जीवन भर एक दूसरे के दुख-सुख में साथ निभा सकें।"

पंडाल में उपस्थित जन खुसर-फुसर करने लगे। मधु के पिता ने अपनी बुद्धिमती लाड़ली बेटी की ओर गर्व से देखा और हंस कर पंडित जी से बोले—"मेरी बेटी की बात गलत तो नहीं पंडित जी। इन दोनों को जीवन भर आनंद से एक साथ रहने का आशीर्वाद दीजिए।"

मधु की इस छोटी सी बात के पीछे

उसका आत्म-विश्वास और स्वाभिमान दोनों छिपे थे।

हमारे देश में बेटा पैदा होने पर खुशी मनाई जाती है- गीत गाए जाते हैं, मिठाई बांटी जाती है। हिजड़े नचवाए जाते हैं। पर बेटी पैदा होने पर यह सब नहीं होता। हिजड़े तो लड़की पैदा होने पर कभी भी नहीं नचवाए जाते।

हमारे पड़ोस में बेटा पैदा हुआ था। ढोलक की थाप पर ज़ोर-ज़ोर से बेसुरे फिल्मी गानों पर नाच हो रहा था। नाच-गाना खत्म हुआ और हिजड़े दक्षिणा लेकर चलने लगे तो सीमा की दादी उन्हें अपने घर चलने के लिए कहने लगीं। सब औरतें हैरान थीं

क्योंकि उसके घर तो पोती हुई थी। एक औरत ने ठिठोली करते हुए पूछ ही लिया, "क्या बात है माता जी! इन्हे किसलिए ले जा रही हो?"

सीमा की दादी बोली, "मेरी पोती हुई है। क्या ये लोग वहां नाच-गाना नहीं कर सकते? पहले नन्हा राजू था, अब उसकी बहन आई है। राजू के समय नाच-गाना हुआ था। अब क्यों नहीं होगा? वह इकलौता बेटा है तो यह भी तो इकलौती बेटी है।"

दादी के मुंह से ऐसी बात सुन कर स्त्रियां खिसियानी होकर चुप हो गईं। दादी ने धूमधाम से नाच-गाना कराया।

पंजाब के लोकगीतों में बड़ा दर्द छिपा है। एक गीत का अर्थ है कि पिता अपनी बेटी को विदा करने की तैयारी कर रहा है। बेटी न जाने के बहाने खोजती है। पिता उसकी एक-एक बात का उत्तर देते हुए 'अपने घर' जाने के लिए कहता है।

बेटी कहती है
तेरे महलां दे विच विच वे
बाबुल डोला नहीं लंघदा।
(तेरे महल के अंदर से मेरी डोली नहीं निकल पा रही।)

पिता का उत्तर है
इक इक इट पुटा देवांगा
धीए घर जा अपने।
(एक-एक ईंट उखड़वा कर मैं इसे खुला कर दूंगा। बेटी, तू अपने घर जा।)

बेटी सवाल करती है
तेरे महलां दे विच विच वे
बाबुल गुड़िया कौन खेले।
(तेरे महल में फिर गुड़िया कौन खेलेगा।)

पिता उत्तर देता है
मेरियां खेड़न पोतरियां
धीए घर जा अपने।
(अब मेरी पोतियां गुड़ियों का खेल खेलेंगी। बेटी, तू अपने घर जा।)

पास बेठी मेघा यह गीत सुन रही थी। अपनी मां की ओर देख कर बोली—"मां, ऐसा क्यों होता है? जब भी बुजुर्ग बातचीत करते हैं तो लड़की को 'पराया धन' कहते हैं। उसकी अनजानी ससुराल को उसका घर कहते हैं। विदा के समय लड़की से यही कहा जाता है कि "जा बेटी, अब वही तेरा घर है। तेरी डोली यहां से उठी है, तेरी अर्थी वहां से उठेगी।"

मां बेटी की बात सुनकर मुस्करा कर चुप रह गई। मेघा ने कहा—"मेरे लिए ऐसा मत सोचना, मां। मैं तो इसे भी अपना घर मानती हूं। वहां जाऊंगी तो उन लोगों के साथ हिल-मिल कर रहूंगी। उन्हें अपनाने की पूरी कोशिश करूंगी। लेकिन यदि मुझे जरूरत पड़ी तो क्या तुम मुझे लौट जाने के लिए कहोगी?"

मां की आंखे भर आईं और ममता-भरे स्वर में वह बोली—"ऐसी बात नहीं है। वह घर तुम्हारा होगा तो यह भी तुम्हारा ही रहेगा।

तुम्हें किसी समय लगे कि तुम पर अत्याचार हो रहा है या अन्याय हो रहा है तो तुम्हारे लिए इस घर के दरवाजे सदा खुले रहेंगे। तुम अपने पुराने अधिकार से इस घर में ममता और हमदर्दी की हकदार सदा रहोगी। चुपचाप रह कर अन्याय सहना भी उतना ही बुरा है जितना अन्याय करना। इसलिए यदि तुम सही हो और फिर भी तुम्हें उस घर में सम्मान या अधिकार नहीं मिलता तो हम तुम्हारी सहायता के लिए तुम्हारे साथ हैं। इस घर की दहलीज पार कर वापस आने में कोई संकोच न करना। जलने-मरने की मूर्खता कभी मत करना।" □

आपबीतीः एक मां की

सुकन्या भसीन

मुझे "सबला" पढ़ते एक साल हो गया है। इसमें जो लिखा होता है वह बहुत अच्छा है लेकिन वह जगबीती है। सो मैंने सोचा आपबीती ही लिखी जाए।

हमने बचपन में यही सब देखा है। नानी के घर थे तो सुबह उठते ही सुनती थी नानी से मौसी को कहते, कि मर्दों की लस्सी में मक्खन डाल देना। कुड़ियों (लड़कियों) की लस्सी में थोड़ा पानी डालकर चाटी बाहर रख दे। मर्दों की रोटी अच्छी तरह चुपड़ दे। बाकी में ऐसे ही हाथ मार दे। मैं झगड़ा करती तो बहुत डांट पड़ती। कहा जाता कि मर्दों को काम करना है और लड़कों को स्कूल जाना है। तुम्हें कौन से पहाड़ तोड़ने हैं। मेरी पढ़ाई चार क्लास तक होने के बाद बंद कर दी गई। आगे पढ़ने के लिए मास्टर जी के पास जाना पड़ता था। सो इच्छा होते हुए भी आगे नहीं पढ़ सकी। खेलने जाओ तो हुकुम होता कि शाम से पहले घर आ जाओ वरना मामा गुस्सा करेगा। काफी चुस्त होते हुए भी सारी इच्छाएं दबानी पड़तीं।

शादी के बाद बच्चे हुए तो अपने बच्चों के लिए वही भावना मेरे अंदर भी आ गई। लड़कियां बाहर जातीं तो मैं कहती जल्दी घर आना। स्कूल की तरफ से कहीं जाती तो मैं मना करती कि लड़कों के साथ नहीं भेजना।

परंतु मेरे पति हमेशा मेरे आड़े आते और बच्चों को सब जगह जाने देते। बेटी-बेटों में कभी भेदभाव नहीं किया। सो सब बच्चे आज खुशहाल हैं। मुझे बहुत खुशी है कि आप बहनों के सहयोग से लोगों में कुछ चेतना जाग रही है। आजकल औरतों के लिए काफ़ी सुधार हो रहा है। सो लगी रहो बच्चियो, फल ज़रूर मिलेगा।

"करत करत अभ्यास, जड़मत होत सुजान
रसरी आवत जात से सिल पर होत निशान।" □

पिताजी, घर में बिजली का काम मैं कर सकती हूं। मैं इन्जीनियर बनना चाहती हूं!
गुड्डो!

बेटी,
क्या लड़कियां भी
इन्जीनियर बन
सकती हैं?
हां मां। स्कूल के
बाद इन्जीनियरिंग
कॉलेज का इम्तिहान
देना पड़ता है।
कहां चली
गुड्डो?
मैं स्कूल जा रही
हूं। पढ़-लिखकर
इन्जीनियर बनना है।
तू चलेगी?

भील बस्ती का बाल मेला

''अंकुर'' समूह

कुछ दिन पहले की बात है। भील बस्ती में एक मेला लगा—''बच्चों का मेला''। एक ऐसा मेला जहां बच्चे अपनी खुशी और जोश के साथ सुंदर-सुंदर चीज़े बनाते हुए, कुछ सीखते भी गए। पतंग, फिरकी, मुखौटे, मिट्टी के खिलौने, रद्दी कागज के खिलौने, बुक-बाइंडिंग, चित्रकारी, गीत, इत्यादि बहुत से तरीकों के ज़रिए बच्चे अपनी-अपनी प्रतिभा को उभारते गए।

प्रोग्राम बनाया—हम सबने मिलकर—''सार'' समूह के सदस्य, ''अंकुर'' के कार्यकर्ता और सी.सी.आर.टी. के सात कलाकार। मकसद था ऐसे बच्चों के साथ एक कला-मेला करना जिन्हें मौके नहीं मिल पाते, साथ ही ऐसी क्रियाएं कराना, जो उनके माहौल से जुड़ती हों और जिसमें ऐसे साधनों का इस्तेमाल हो जो सस्ते या मुफ्त के हों और आस-पास आसानी से मिल जाएं।

यह मेला एक अलग तरीके का था। बच्चे अपनी-अपनी पसंद के अनुसार, अपनी-अपनी रफ्तार के साथ अलग-अलग कलाकारों के साथ बैठ-बैठ कर चीज़े बनाते रहे। जिन चीज़ों से वे खेलते हैं या खेलना चाहते हैं, वे खुद आसानी से बना पाए।

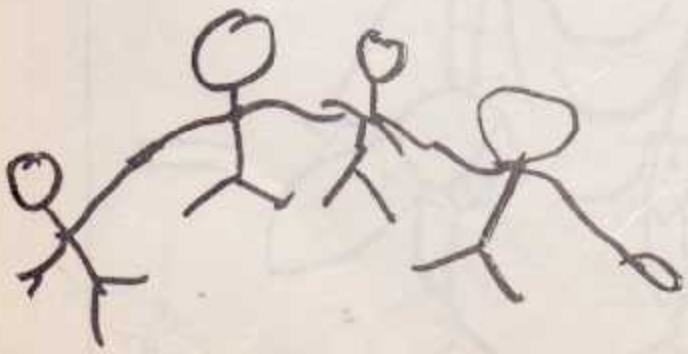

पहले दिन सार व अंकुर समूह के सदस्यों, सातों कलाकारों और बच्चों का आपसी परिचय हुआ। फिर ''नन्हें'' कलाकार अपने बड़े साथियों के साथ, उम्र व रुचि अनुसार ग्रुप बनाकर भील-बस्ती के सात घरों के आंगनों में बैठ गए। रंग-बिरंगी कनातें, ऊपर लहराती झंडियां, खुला आकाश और नीचे—बच्चे पतंगें, मुखौटे, खिलौने, चिड़ियां, फिरकनी, सांप, बतख, फिरकी बना रहे थे। बाइंडिंग का काम कर रहे थे। तीन दिन तक यह रंगीन माहौल बरकरार रहा। शुरू में बच्चों की संख्या 60-70 थी जो बाद में 120-130 तक पहुंच गई।

बच्चों का उत्साह व चुस्ती तो देखते ही बनती थी। वे घूम-घूम कर अपनी चीज़ें एक-दूसरे को, कलाकारों को और शिक्षिकाओं को दिखाते—''हमने तो चिड़ियां बनाई।'' ''मेरी पतंग तो बहुत ऊंची उड़ेगी।'' ''ये मेरी रसोई के बर्तन हैं।'' ''किसान'' व ''धनी राम'' अंगुली पर चढ़कर सबसे बातें करता रहा। जब एक चीज़ बनाना सीख लेते थे तो भागकर दूसरे ग्रुप में बैठ जाते थे। बच्चे बहुत जल्दी सीख रहे थे। अपनी इच्छा और कल्पना की उड़ान भरने में व्यस्त थे। शिक्षिकाओं व कलाकारों—दोनों से ही बच्चों की बहुत बढ़िया दोस्ती हो गई।

कार्यकर्ताओं ने भी लगन व उत्साह से इस वर्कशाप में भाग लिया। बच्चो पर ध्यान देना, उन्हें और कलाकारों को मदद देना—यह काम बखूबी निभाया। कभी-कभी शिक्षिकाएं कलाकार से कला के विषय में, उसके इस्तेमाल के बारे में इतने सारे सवाल करने लग जातीं थीं कि उनके कान में जाकर कहना पड़ता—"वर्कशाप बच्चों के लिए भी है।"

सभी कलाकारों ने लगन, प्यार व धीरज से बच्चों को सिखाने में मदद दी। बच्चों से उनकी बनाई चीज़ों पर बातचीत की, उन्हे प्रोत्साहन दिया। शिक्षिकाओं के सवालों का भी जवाब देते रहे, यह कह कर कि "आपका अच्छी तरह सीखना भी ज़रूरी है ताकि आप खुद इस काम को बच्चों के साथ करते रहें।"

बच्चों की मांएं कभी-कभी आंगन में जाकर उनके साथ बैठ कर काम देखतीं। कभी कनात के सहारे खड़ी हो रोचकता व उत्सुकता से भरपूर कलाकारों, शिक्षिकाओं और बच्चों को देखतीं। बस्ती की महिलाओं ने, युवक ग्रुप के लड़कों व पुरूषों, सभी ने हर दिन सहयोग दिया—पानी की व्यवस्था करने में, आंगन को साफ करने में, झंडियां लगाने में। बच्चों ने जोर-शोर से सफाई की। भाग-भाग कर सामान लाए।

अंतिम दिन बच्चों के बनाए काम की एक प्रदर्शनी हुई। बच्चे अपनी बनाई चीज़ों—मुखौटों, बतख इत्यादि को लिए हुए भील बस्ती की गलियों मे घूमे और सबको प्रदर्शनी देखने का न्यौता दिया—

गोल-गोल, गोल-गोल एक पैसा
हमारे गाने का ढंग ऐसा
आओ देखो पहाड़ी पर
बच्चों ने किया कमाल कैसा।।
मुखौटा बनाया, सांप बनाया
सिपाही बनाया
ढोल भी बनाया।।
नीली गुलाबी पतंगें बनाई
ऐसी भी एक पतंग बनाई
बरखा में भीगी
फिर भी उड़ाई।।
रद्दी को होली के
रंग से रंगाया
उससे भी चिड़ियां
कबूतर बनाया।।
गोबर्धन ने शेर का
मुखौटा लगाया
ईसर ने रावण सा
चेहरा बनाया।।

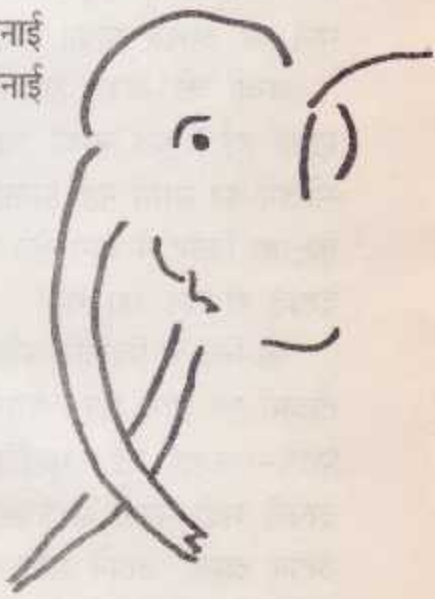

एक कलाकार ने ढोल बजाकर इस झुंड का साथ दिया।

ज्यादातर बच्चों की मांएं आईं। उन्हें लगा कि बच्चों ने बहुत बढ़िया काम किया है और इस तरह के मौके उन्हें और भी मिलने चाहिएं।

बच्चों के माता-पिता से जुड़ाव बढ़ा। बच्चों की अपनी बनाई चीज़ों को देखकर माता-पिता भी कहने लगे—"अरे तुम यह भी कर सकते हो। हम तो समझते थे कि तुम्हें शरारतों के सिवाय कुछ नहीं आता।" क्योंकि यह कार्यक्रम माता-पिता के सामने ही हो रहा था उनसे बात करने का, उनकी राय जानने का व उनका सहयोग पाने का अच्छा मौका मिला।

बच्चों को अपने हाथ से चीज़े बनाने में बड़ी खुशी हुई। कुछ बच्चों को लगा, दूसरी चीज़ें सीखने का समय नहीं मिला। सब कुछ सीख लेने का, हर क्रिया में भाग लेने का उनका उतावलापन देखते ही बन रहा था।

जो चित्र व खिलौने बने वो घर पर सज गए, दीवारों पर टांगे गए। पतंगे—अपनी बनाई पतंगें—उड़ाई गईं। मुखौटे लगा-लगा घूमे। अपनी मढ़ी कापी में लिखने लगे। कुछ चीज़ें अपने दोस्तों, अपने छोटे भाई-बहनों को दीं।

बच्चों और बड़ों में खूब बातें हुईं—"पतंग कैसे बनाई", "ये प्लास्टिक की पतंग कैसे उड़ेगी", "ये सिपाही क्या करेगा," "क्या लड़ना-मारना चाहिए" इत्यादि। हाथी के मुखौटे, मिट्टी की बिल्ली और अन्य कठपुतलियों के ज़रिए बच्चों ने कहानी बनाई, गीत सुनाए और बातचीत की। बच्चों की झिझक खुली, हाथ खुले, उन्होंने खूब मजा किया अपनी "बिल्ली" की तरहः—

मेरी बिल्ली
प्यारी काली
आई घूमने
मेले पाली
घूम-घूम कर
मजा लगाई
अपना भी
सबका दिल बहलाई।
मोर भइया से
लगन लगाई
कबूतर कका से
यारी लगाई
सिपाही भइया की
बन्दूक फेंकाई
घर-घर जाकर
प्यार जताई।

बड़ों के लिए उनका बचपन लौट आया, कुछ समय के लिए। कुल मिलाकर भील बस्ती में बसन्त आ गया था।

एक थी चिड़िया एक था हाथी
दोनों बहुत थे अच्छे साथी
मैंने बिल्ली पाली थी
बिल्ली बोली म्याऊं-म्याऊं। □

अब भी देर नहीं हुई है

मित्रो, अब भी देर नहीं हुई है
हमारे साथ आओ
आओ हम अपना नाम लिखें
आओ पढ़ें

आओ आसपास की दुनिया जानें
आओ खुद को पहचानें
पहचानो कि माटी की गंध
जहां से मानव उगा है
हमारे पसीने की ही खुशबू है

मित्रो अब भी देर नहीं हुई है
हमने दिन रात काम किया
और कई-कई बार दुनिया को बनाया
हमने दिन-रात काम किया
और अपने को खपाया
पर आश्चर्य !
कि जो आलस में पड़े रहे

उंचाइयों तक पहुंचे
और हम
जिन्होंने मेहनत की
गर्त में धकेले गए

मित्रो अब भी देर नहीं हुई है
ऐसा क्यों?
ऐसा क्यों?
क्या हमें अब तक नहीं पता
समय आ गया है
कि हम अपनी माटी
अपने पसीने की कीमत पहचानें
जब अक्षर ताकतवर अस्त्र बने हमारे हाथों में
जब किताबें हमारी दोस्त और साथी बनेंगी

जब एकता की ताकत हमें रास्ता दिखाएगी
तब हर चीज
हमारी इच्छा के अनुसार चलेगी।

साभार—भारत ज्ञान-विज्ञान समिति

भ्रष्टाचार के खिलाफ औरतों की लड़ाई

सुवाणा गांव में सूखा राहत का काम तालाब पर चल रहा था। वहां काम करने वाली कई औरतें महिला विकास बैठकों में जातीं। 'मेट' ने उनसे 10-10 रु. यह कह कर मांगे कि वह उनकी मज़दूरी की दर बढ़वाएगा। उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी, पर विरोध करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। 'मेट' ने कहा था कि वह यह रुपया सरपंच और ओवरसियर को जाकर देगा। वह उन लोगों के काम का समय बढ़ा कर लिख देगा और उन्हें ज़्यादा मज़दूरी मिल जाएगी।

यह बात जब 'ग्राम साथिन' को पता लगी तो उसने परियोजना निदेशक और प्रचेता को बताई। तब एक योजना बनाई गई। साथिन वहां कंडे चुगने के बहाने जाएगी जिससे किसी को शक न हो। एक औरत को उन्होंने सच्ची बात कहने के लिए तैयार कर लिया।

योजना अनुसार निदेशक, साथिन और प्रचेता वहां पहुंचे। उन्होंने मजदूरिनों से जानकारी मांगी तो उन्होंने इंकार कर दिया और कहा कि उन्होंने कोई रुपया नहीं दिया। इस पर परियोजना निदेशक ने साथिन को डांटना शुरू कर दिया कि उसने झूठी शिकायत क्यों की।

साथिन से कहा कि "आज से तुम्हें साथिन के पद से हटाया जाता है।" यह सुनकर मजदूर औरतों ने विचारा कि यह बहुत गलत हो रहा है। साथिन तो उनके भले के लिए ही काम करती है।

इसी बीच 'मेट' गांव जाकर सरपंच को बुला लाया। उनके इशारे पर निदेशक की गाड़ी पर पत्थर फेंके गए। मज़दूर औरतों को बुरा-भला कहा गया। फिर भी निदेशक, प्रचेता और साथिन अडिग रहे। क्लक्टर को पत्र लिखकर उनसे कार्यवाही करना तय हुआ। इसी बीच 'मेट' रुपये लेकर आ गया और बोला "इन्हें लौटा दीजिए, हमसे गलती हो गई। हमें माफ कर दीजिए।" परियोजना निदेशक ने रुपये लेने से इंकार कर दिया और कहा कि फैसला अधिकारी करेगें। सबके बयान लिए गए। थाने में प्रथम सूचना रपट लिखाई गई और अपराधी गिरफ्तार किए गए।

महिला समूह की इस कार्यवाही से घबरा कर चौथे दिन संबंधित लोगों ने रुपया मजदूरिनों में बांट दिया। जांच अधिकारियों से कहा गया कि रकम पहले वसूल की गई थी, लेकिन इस घटना के बाद लौटा दी गई। संगठित प्रयास से रिश्वत में दिया पैसा वापिस मिल गया और अपराधियों को सज़ा मिली। इस घटना का असर आसपास चल रहे राहत कार्यों पर भी पड़ा।

पंचायत समिति सुवाणा
भीलवाड़ा (राजस्थान)

□

बिटिया की कहानी

जननाट्य मंच दिल्ली ने "औरत" नाटक औरत के जीवन के खास-खास पहलुओं को लेकर बनाया है। यहां हम उस के बचपन की एक झांकी दे रहे हैं।

गोलाकार अभिनय-स्थल। सात अभिनेता (कम भी हो सकते हैं) एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखकर गोलाकार रचना में घूमते हुए एक तरफ से मंच पर आते हैं। इनके बीच में एक छिपी हुई अभिनेत्री है। मंच के बीचोंबीच आकर रुकते हैं। एक साथ पलटकर दर्शकों की तरफ मुंह करके बैठते हैं। अभिनेत्री बीच में खड़ी दिखाई देती है। अभिनेत्री—"मैं एक मां, एक बहन, एक औरत हूं, एक बेटी हूं जो न जाने कब से...।

सुत्रधार : आइए आपको एक कहानी सुनाएं, छोटी सी कहानी। छोटी सी बिटिया की छोटी सी कहानी।

औरत : छोटे अ से अनार, बड़े आ से आम। अ से अनार, बड़े आ से आम, आम-अनार, अनार-आम, छोटे अ से अनार...।

बाप : (एक अभिनेता अठता है बाप के अभिनय में) मुन्नी... मुन्नी... कहां गई तू। तुझे चिलम भरने को दी थी। अब तक नहीं लौटी।

औरत : (पास आते हुए) अ से अनार, आ से आम।

बाप : क्यों री, यह घर है या स्कूल... चिलम भर दी? घंटा भर हो गया काम से आए। कब तक मैं यूं ही बैठा रहूंगा?

चित्रांकन
दिया थापर

औरत : मैं पाठ याद कर रही थी। मास्टर जी कहते हैं घर में पढ़ा करो। समझ न आए तो अपने बाबा से पूछो।

बाप : बाबा से पूछो! बाबा से पूछो तो घर बैठो और काम करो। क्या करेगी स्कूल जा के? तुझे कौन दफ़्तर जाना है?

औरत : मास्टर जी कह रहे थे , कल किताब ज़रूर लाना, नहीं तो नाम काट देंगे। कह रहे थे, स्कूल की वर्दी धुली हुई होनी चाहिए। इंस्पेक्टर आने वाले हैं।

बाप : हरामज़ादों को बच्चों का मन बहलाने के सिवा कोई काम है? यहां दो जून को दाने नहीं हैं घर में। बरसात आने वाली है और छप्पर अभी तक ठीक नहीं करा पाए। इन्हें धुली वर्दी चाहिए! कल से स्कूल बंद।

औरत : नहीं बाबा, मैं स्कूल जांऊगी...।

बाप : घर का काम किया कर... दस साल की होने को आई। ढोंग की ढोंग स्कूल जाएगी... हूं। कुछ काम ढूंढ दूंगा तेरे लिए। यह आवारों की तरह उछल-कूद बंद कर।

औरत : बाबा, एक रस्सा ला दो, शाम को खेलने के लिए...।

बाप : यही तो आफ़त है। बच्चों को स्कूल भेजना ही नहीं चाहिए। पढ़ाई के साथ स्कूल एक बला हो तो...।

औरत : रस्सा ला दो बाबा, रस्सा...।

बाप : गले में लटका के मर क्यों नहीं जाती, कम्बख्त? तेरी मां मर रही है। तू भी मर, पीछा छूटेगा। लड़का है, किसी तरह पाल लूंगा। कहां से लाऊं तेरे लिए रस्सा? तनख्वाह के नाम से पिछले 5 साल से एक पैसा नहीं बढ़ा। बढ़ाने की बात भी की तो सालों ने तालाबंदी की धमकी दे दी और एक तरफ़ ये हैं... किताब चाहिए, खिलौने चाहिएं। चल, उठकर बासन मांज। हरामजादी कहीं की, स्कूल जाएगी।

औरत : जाऊंगी, जाऊंगी! सुबह-सुबह सारे बच्चे सुंदर कपड़े पहनकर बस में बैठकर जाते हैं। मैं भी जाऊंगी।

बाप : उन बच्चों की जितनी फ़ीस है उतनी तेरे बाप की पगार है। चल उठ और लाला से जाकर आटा ले आ।

औरत : बाबा, वह आटा नहीं देता।

बाप : उसकी साले की... उधार देता है, कोई भीख नहीं देता।

औरत : पर बाबा, उसका बेटा कहता है...।

बाप : क्या कहता है?

औरत : कहता है... कहता है... अगर उधार में आटा चाहिए तो दुकान बंद होने के बाद अकेले में आना।

बाप : सुअर का बच्चा! अगर उधार न चुकाना होता...।

(बाप और औरत दोनों अपनी मुद्रा में 'फ्रीज' हो जाते हैं।)

(अगले अंक में जारी)

मेरी बेटी

मेरी छोटी नन्ही प्यारी
लगती है प्राणों से प्यारी
कोई कहता राजकुमारी
कोई कहता गुड़िया रानी।

दिन भर दादी गोद खिलाती
दादा बनते घोड़ा हाथी
भैय्या लेके एक झुनझुना
कहता ले ले बहना रानी

कभी खेलती, कभी हंसाती
कभी रूठ कर खूब सताती
तुतला-तुतला कर बातें करती
दिन भर घर में शोर मचाती।

मां कहती है खूब पढ़ेगी
बापू कहते राज करेगी
बिटिया है, ओ घर का सूरज
इस पर न छाए कोई बदली।

किरण मिश्र
भोपाल

अम्मा

आओ अम्मा की बात सुनाएं
उसके अनेक रूप दिखाएं
मां बन घर संसार चलाए
बन किसान खेतों पर जाए
कर दिहाड़ी कमा कर लाए
तब मां मेरी मज़दूर कहलाए
पढ़-पढ़ पोथी ज्ञान बढ़ाए
सखियों संग जब नाचे गाए
मस्त मसख़री मां बन जाए
सारे रूप हम अगर गिनाएं
जाने कितने पन्ने भर जाएं

कमला भसीन

आज फिर से औरत उठ
खड़ी हो रही है
वह अंधेरे को फाड़कर निकल रही है